**ओ३म्**

**‘मनुष्य सृष्टिकर्त्ता ईश्वर और अपने यथार्थ स्वरूप**

**को जानने में उदासीन क्यों रहता है?’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

मनुष्य के पास अपना एक भौतिक शरीर होता है। इस शरीर के साथ ही शरीर में अभौतिक जीवात्मा भी रहती है। जीवात्मा का गुण व स्वभाव ज्ञान व कर्म है। ज्ञान दो प्रकार का होता है स्वभाविक व नैमित्तिक। स्वभाविक ज्ञान जीवात्मा का अपने निज अस्तित्व का ज्ञान है जिसे वह किसी दूसरे यहां तक की माता-पिता से भी सीखता नहीं है। जो ज्ञान सिखाया व सीखा जाता है अर्थात् माता-पिता, आचार्य एवं अन्यों जिसमें पुस्तकें व ग्रन्थ आदि भी सम्मिलित है, वह प्राप्त ज्ञान नैमित्तिक ज्ञान कहलाता है। मनुष्य के पास बुद्धि होती है जिस कारण वह बचपन से ही अपने इर्द गिर्द की अज्ञात बातों को जानना चाहता है और उसे जैसा बता दिया जाता है, उसे प्रायः स्वीकार कर लेता है। कुछ थोड़े से मनुष्य व बच्चे ऐसे भी होते हैं जो आंख बन्द कर किसी बात को स्वीकार नहीं करते और तर्क-वितर्क करते हैं। तर्क वितर्क करना सत्य को जानने के लिए आवश्यक है। जो सत्य की इच्छा से ऐसा करते हैं वह मनुष्य धन्य हैं और जो आंखें बन्द कर सत्य व असत्य दोनों प्रकार की बातों को स्वीकार कर लेते हैं वह उसी बौद्धिक एवं मानसिक वातावरण में जीवन व्यतीत करते हैं जो कि अधिक प्रशस्त नहीं होता। ऐसे लोगों का संसार में आना व जीवन व्यतीत करना अधिक श्रेयस्कर नहीं है। यदि यह कहें कि वह पृथिवी पर भार हैं तो अनुचित न होगा। मनुष्य को अपनी धर्माधर्म सम्बन्धी सभी मान्यताओं के साथ क्या, क्यों, क्यों नहीं, कैसे आदि प्रश्नों पर विचार कर जो तथ्य सम्मुख आयें, उन्हें अकाट्य, युक्तिसंगत व सत्य होने पर ही मानना चाहिये। यदि वह ऐसा करते हैं तभी वह मनुष्य कहे जा सकते हैं। शास्त्रों के अनुसार सोने, जागने, खान, पीने, सन्तान उत्पन्न करने आदि क्रियायें पशुओं व मनुष्यों में समान होने से सब पशु ही होते है। मनुष्य में जितना अधिक यथार्थ ज्ञान होता है, ऐसा ज्ञान जो ईश्वर व जीवात्मा के विषय के साथ सृष्टि विषयक पदार्थों एवं मनुष्य के सदाचरण व व्यवहार का ज्ञान ही मनुष्य को पशुओं से पृथक कर उसके ज्ञान के स्तर के अनुरुप मनुष्यता का द्योतक व परिचायक होता है। अतः सच्चा व श्रेष्ठ मनुष्य बनने के लिए उसे मननशील, सत्यान्वेशी, तार्किक प्रवृति सहित सत्य का आचरण करने में व्रती होना चाहिये। पुस्तकी धर्म, मत व परम्पराओं को आंख बन्द कर मानने से मनुष्य अपने जीवन को लाभ के स्थान पर हानि ही पहुंचाता है। यही आजकल चहुंओर देखने को मिल रहा है। इसी लिए कहा जाता है कि बहुत से या ज्यादातर मनुष्य जो विवेकशून्य हैं, वह अपने शत्रु आप होते हैं। आत्मा का स्वाभाविक गुण ज्ञान है अतः स्वाभाविक व नैमित्तिक दोनों प्रकार के ज्ञान से अपने व सृष्टिकर्ता के स्वरूप को जानना और साथ हि सृष्टि के पदार्थों का त्यागपूर्वक सदुपयोग व उपभोग करना ही मनुष्य की उन्नति का द्योतक होता है।

जीवात्मा स्वभावतः अल्पज्ञ है और ईश्वर स्वभावतः सर्वज्ञ है। अल्पज्ञ का अर्थ है सीमित व थोड़ा ज्ञान और सर्वज्ञ का अर्थ है अपरिमित व ज्ञान की पराकाष्ठा, श्रेष्ठता, सर्वांगपूर्णता व उसमें किसी भी न्यूनता का अभाव। मनुष्य अल्पज्ञ है अतः उसके सभी कार्यों में न्यूनता, कमियां व त्रुटियां होती हैं। संसार में दो प्र्रकार का ज्ञान है। पहला वेदों का जो सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने दिया। उसके बाद जो भी ज्ञान मनुष्यों ने अपनी ऊहा व तर्क-वितर्क से जाना, वह सब मनुष्यकृत है। संसार में वेद के अतिरिक्त सभी धर्म व मतों की पुस्तकें भी मनुष्यकृत हैं, ईश्वरकृत नहीं हैं। अतः सभी धर्म व मत की पुस्तकों में जो ज्ञान है वह सर्वांश में निभ्र्रान्त व पूर्ण सत्य नहीं है। उनमें यत्र-तत्र असत्य व सत्य दोनों का समावेश वा मिश्रण है। इसी कारण महर्षि दयानन्द ने यह नियम बनाया कि **वेद स्वतः प्रमाण है अर्थात वेद की प्रत्येक बात प्रमाण है जबकि संसार के इतर सभी ग्रन्थों जिसमें ब्राह्मण ग्रन्थ, दर्शन ग्रन्थ, उपनिषदें, स्मृतियां, रामायण, महाभारत आदि हैं, वह स्वतः प्रमाण नहीं हैं अपितु परतः प्रमाण हैं।** परतः प्रमाण वह होता है जो वेदेतर किसी ग्रन्थ व महापुरुष का वाक्य हो परन्तु उसका वेदानुकूल होना आवश्यक है। यदि कोई वेदविरुद्ध वचन, मान्यता व सिद्धान्त है तो वह स्वीकार करने योग्य नहीं होता। स्थिति यह है कि आज सभी लोग अपने अपने मत की सभी बातों को बिना विवेचना व सत्य-असत्य की परीक्षा किये सत्य मानते हैं जिससे संसार में अशान्ति व अनेक समस्यायें उत्पन्न हो गई हैं व हो रही हैं। जब तक मनुष्य वेदों को सत्य व स्वतः प्रमाण स्वीकार नहीं करेगा और वेदेतर संसार के सभी ग्रन्थों को परतः प्रमाण मानकर उनकी प्रत्येक बात की विवेचना व सत्यासत्य की परीक्षा नहीं करेगा तब तक संसार में पूर्ण शान्ति नहीं आ सकती। लोक लुभावनी बातों से समस्याओं का हल कभी नहीं होता अपितु समस्यायें गम्भीर ही होती हैं। ऐसा ही आज भी देखने को मिल रहा है। आज स्थिति यह है कि अपनी अपनी ढफली अपना अपना राग है। संसार में शान्ति के हित में सभी विद्वानों को परस्पर प्रीतिपूर्वक सभी धार्मिक व सामाजिक मान्यताओं के गुण-दोष की परीक्षा करनी चाहिये और एक सर्वसम्मत मत बनाने का प्रयास करना चाहिये।

मनुष्य सत्य और असत्य को जानने में उदासीन रहता है इसका कारण भी मनुष्य की अल्पज्ञता व अविद्या होना तथा अपनी सीमित बौद्धिक क्षमता के अनुसार मिश्रित सत्य व असत्य मान्यताओं व परम्पराओं को मानना है। महर्षि दयानन्द के आगमन से पूर्व संसार में यही स्थिति थी। उन्होंने अपने पूर्वजन्म के संस्कारों व ईश्वर की प्रेरणा से परम्पराओं को यथावत् स्वीकार नहीं किया अपितु अपने अन्दर योगाभ्यास व शास्त्रों के अध्ययन से विवेक उत्पन्न किया और उसके बाद सभी मतों की सभी मान्यताओं की समीक्षा करने के साथ ईश्वर व अपनी आत्मा का साक्षात्कर कर धार्मिक व सामाजिक मान्यताओं की विवेचना द्वारा उन्हें तर्क की तराजू पर तोल कर सभी सत्य बातों को स्वीकार किया और असत्य बातों का त्याग व खण्डन किया। महर्षि दयानन्द ने जो कार्य किया उसके परिणामस्वरूप समाज व विश्व को लाभ हुआ और उन्हें निःश्रेयस वा मोक्ष की प्राप्ति परमात्मा के विधान के अनुसार हुई। यदि हमें दुःखों से पूर्णतः मुक्त होना है तो हमें भी उनके मार्ग व जीवन का अनुकरण और अनुसरण करना होगा। अन्य दूसरा कोई मार्ग नहीं है। योगाभ्यास व वेदाध्ययन के बिना विवेक उत्पन्न नहीं हो सकता और न ही ईश्वर का साक्षात्कार हो सकता है। यदि यह दोनों सिद्धियां प्राप्त नहीं की तो मनुष्य दुःखों से पूर्णतया मुक्त भी नहीं हो सकता। अतः निजी व विश्व के कल्याण के लिए सुधी व विवेकशील लोगों को वेदों की शरण में आकर वेदाचरण को स्वीकार करना चाहिये। यदि वह ऐसा नहीं करते तो वह वस्तुतः सच्चे व आदर्श मनुष्य नहीं है। मनुष्य को ईश्वर व आत्मा का ज्ञान प्राप्त करने में उदासीनता का त्याग कर सद्ग्रन्थों की खोज करनी चाहिये और उन्हें पढ़ना चाहिये। सौभाग्य से ऋषि दयानन्द रचित **‘सत्यार्थप्रकाश’** ग्रन्थ पढ़कर सत्य को जाना जा सकता है और तदनुरुप साधना व आचरण कर ईश्वर को प्राप्त भी किया जा सकता है। हम ईश्वर व जीवात्मा का स्वरूप व सच्चे व श्रेष्ठ मनुष्य की ऋषि दयानन्दकृत यथार्थ मान्यता प्रस्तुत कर इस लेख को विराम देंगे।

**यह हमारी समस्त सृष्टि एक सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वज्ञ ईश्वर के द्वारा अनादि मूल जड़ कारण प्रकृति से बनी है। ईश्वर निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। ईश्वर ने यह सृष्टि पूर्वकल्प की प्रलय से जीवों के शुभाशुभ कर्मों का फल देने के लिए बनाई और सभी जीवों को उनके प्रत्येक जन्म के अवशिष्ट कर्मों के फलों को देने के लिए सृष्टि का पालन करता है। जीवात्मा एक चेतन सत्ता है जो अनादि, अनुत्पन्न, सनातन, नित्य, अति अल्प परिमाण, अल्पज्ञ, एकदेशी, ससीम, अति सूक्ष्म, आंखों से न दीखने वाली, कर्म-फल बन्धन व जन्म-मरण में बंधी हुई, जीवन मुक्ति व मोक्ष की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील स्वरूप व गुणवाली सत्ता है।** मनुष्य किसे कहते हैं व मनुष्य का आदर्श स्वरूप कैसा है इसका वर्णन करते हुए महर्षि दयानन्द ने लिखा है कि **‘‘मनुष्य उसी को कहना कि जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुःख और हानि-लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामथ्र्य से धर्मात्माओं, की चाहे वे महा अनाथ निर्बल और गुणरहित क्यों न हों, उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती, सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें, परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक कभी न होवें।”** मनुष्य को सदा सत्य का ही पालन करना चाहिये परन्तु ऐसा होता नहीं है। इसका क्या कारण है? इस पर प्रकाश डालते हुए सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में महर्षि दयानन्द ने कहा है कि **‘‘मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला होता है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है।”**

मनुष्य अपनी अल्पज्ञता, स्वार्थ, हठ, दुराग्रह और अविद्या आदि कारणों से ईश्वर व जीवात्मा आदि के सत्यस्वरुप को जानने और वेदानुसार धर्माचरण से दूर रहते हुए भिन्न भिन्न अवैदिक व अज्ञानपूर्ण मतों का अनुसरण करता है। ईश्वर की कृपा व भाग्योदय होने पर ही वा इन कारणों के दूर होने पर ही वह उदासीनता छोड़ सत्य में प्रवृत्त हो सकता है। असत्य को छोड़ना और सत्य में प्रवृत होना व रहना ही जीवन का उद्देश्य है। आईये, सन्मार्ग पर चलने का व्रत लें। इति।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**